मत्स्य पुराण के व्रतों का प्रतीकात्मक महत्त्व

डा. नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी

प्रास्ताविक

'व्रत' शब्द के अर्थ के विषय में अनेक प्रकार के मत प्रदर्शित किये गये हैं। इनका विस्तार से विचार करते हुए पाण्डुरंग वामन काणे[1] इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि 'व्रत' का तात्पर्य पावन निश्चय अथच आचरण विषयक बन्धन है, जिसका अनुपालन किसी व्यक्ति अथंवा सम्प्रदाय विशेष से सम्बद्ध सदस्य के द्वारा किया जाता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि 'व्रत' वे अनुष्ठान हैं, जो एक या अनेक देवताओं के नाम से ऋषियों द्वारा विशेष प्रकार के फलों की प्राप्ति के लिये कहे गये हैं। व्रतों का उल्लेख वेद, सूत्रग्रन्थ, स्मृतियाँ, पुराण, उपपुराण तथा बाद के निबन्ध ग्रन्थों में अबाध रूप से होता रहा है। ईसवी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों तक व्रतों की संख्या बहुत अधिक नहीं थी लेकिन बाद में बड़ी तेजी से उसमें बढ़ोतरी होती गयी। श्री काणे ने अपने ग्रन्थ में[2] दो सौ से कुछ अधिक पृष्ठों में सन्दर्भ के साथ कोई एक हजार व्रतों की लम्बी सूची दी है। यह भी स्मरणीय है कि 'व्रत' काल के प्रभाव से अछूते नहीं रहे हैं। हमें कुछ पुराने व्रतों का लोप तथा नये व्रतों का उदय दिखलायी पड़ता है। उदाहरण रूप में पिछले पचास-साठ वर्षों में उदित 'सन्तोषीमाता के व्रत' की ओर संकेत कर सकते हैं।

यदि हम केवल पुराणों का ही विचार करें तो पुराण साहित्य के कोई पच्चीस हजार श्लोक केवल व्रतों के लिये समर्पित हैं। अकेले **मत्स्य पुराण** में, जो इस समय हमारा विवेच्य ग्रन्थ-हैं, बत्तीस अध्यायों के[3] एक हजार एक सौ तैंतीस श्लोक केवल व्रत की बात करते हैं। इनके अतिरिक्त 'दानों' से संबंधित अध्याय भी व्रतों की बातों को समझाने में सहायक होते हैं।

'व्रत', 'उत्सव' और 'कुलाचार' ये शब्द कुछ अंशों में एक दूसरे से मिलते हैं, पर समानार्थक नहीं हैं। उत्सव अधिकतर सार्वजनिक, सार्वकालिक तथा हर्ष और उल्लास से भरे आयोजनों से युक्त होते हैं। उनका सामाजिक महत्त्व भी होता है। कुलाचार किसी कुल-विशेष से सम्बद्ध होते हैं, जिनका पालन उस कुल के व्यक्तियों के द्वारा परम्परागत रूप से किया जाता है। व्रत में इन्हीं के समान देवपूजन, मिष्टान्न, भोजन, संगीत आदि के आयोजन तो होते हैं, किन्तु 'व्रत' की कुछ अपनी अलग विशेषताएँ होती हैं, यथा–

1. अल्प प्रयास से विपुल पुण्य की प्राप्ति का साधन व्रत है।

2. व्रत का सम्बन्ध विशेष देवता से होता है। इसका अनुष्ठान इस देवता की कृपा, संकट निवारण, ऐश्वर्य या किसी विशेष लाभ की प्राप्ति एवं कामना की पूर्ति के लिये किया जाता है। अधिकतर व्रत 'काम्य' होते हैं।

3. व्रत के अनुष्ठान में संकल्प, हवन, देवता का तदुपयुक्त पद्धति से पूजन, उपवास, ब्राह्मण, कुमारी कन्याएँ, सुहागिनी स्त्रियाँ तथा अन्य लोगों के साथ ही अंधे, गरीब तथा असहाय लोगों को अन्नदान, गोपूजन एवं गोदान आवश्यक होता है।

4. व्रत साधारणतया सीमित अवधि तक ही किया जाता है। निश्चित अवधि पूर्ण होने पर व्रत की समाप्ति, जिसे 'उद्यापन' कहते हैं, पूरे समारोह के साथ करना अनिवार्य है। उद्यापन में अन्यान्य बातों के

साथ आराध्य देवता की प्रतिमा या उससे सम्बन्धित किसी प्रतीक का दान अवश्य देय है। यही हमारे प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य क्षेत्र है।

5. कुछ व्रत 'आचार' की श्रेणी में आते हैं जिनका उद्यापन नहीं होता, अपितु जीवन भर पालन होता है। वैष्णवों का एकादशी व्रत, शैवों के प्रदोष एवं शिवरात्रि व्रत, गाणपत्यों की संकष्टी चतुर्थी आदि इसी कोटि के व्रत हैं।

6. व्रत पालन में आचार, पूजन, उपचार आदि का विशेष ध्यान रखा जाता है।

7. व्रतस्थ व्यक्ति के लिये दस नियमों का (दश धर्मों का)[4] पालन करना अनिवार्य है। ये दस धर्म हैं–क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच या पावित्र्य, इन्द्रिय-निग्रह, देवपूजन, अग्निसेवा अर्थात् हवन, सन्तोष और अस्तेय अर्थात् चोरी न करना।

8. व्रत अधिकतर व्यक्तिगत रूप से किये जाते हैं न तो वे सार्वजनिक होते हैं, न सार्वकालिक और न परम्परागत। उद्यापन के बाद व्रत का पालन समाप्त हो जाता है।

प्रस्तुत लेख में हम केवल **मत्स्य पुराण** में वर्णित व्रतों का ही विचार करेंगे, वह भी सांगोपांग नहीं। हमारी दृष्टि व्रत से सम्बद्ध देवता, उद्यापन के अवसर पर दान रूप में दी जाने वाली उस देवता की प्रतिकृति या उससे सम्बद्ध प्रतीकों के अध्ययन तक ही सीमित रहेगी।

आगे बढ़ने के पूर्व प्रस्तुत विवेचन से सम्बन्धित निम्नांकित बिन्दुओं की चर्चा प्रासंगिक होगी–

1. **मत्स्य पुराण** को विद्वानों ने यद्यपि ईसवी सन् की तीसरी से छठीं शती की कृति माना है, तथापि उसमें निश्चित रूप से तीसरी शती के पूर्व से चली आने वाली बातों का भी समावेश किया गया होगा, क्योंकि 'पुराण' मूलतः संकलन ग्रन्थ होते हैं, उनके निर्माण में 'सातत्य' रहा है, 'समाप्ति' नहीं।

2. पुराणों में परस्पर लेनदेन प्रचुर मात्रा में हुआ है। **महाभारत** के अंश भी पुराणों में विद्यमान हैं। **मत्स्यपुराण** के व्रताध्याय **पद्मपुराण** के सृष्टिखण्ड के व्रताध्यायों से मेल खाते हैं; यद्यपि दोनों के व्रतों के क्रम में भिन्नता है, तथा अध्यायों में भी जोड़-तोड़ की गई है, पर अधिकतर व्रतों के नाम, वर्णन और श्लोक भी समान हैं। कहीं-कहीं तो **मत्स्यपुराण** के पाठ को शुद्ध रूप में समझने में पद्म सहायक होता है।

3. मत्स्य में कुल 94 व्रत (मुख्य व्रत 30 + षष्ठीव्रत के अन्तर्गत 64) वर्णित हैं; पद्म के सृष्टिखण्ड के कुल 10 अध्यायों में[5] एक हजार एक सौ चौरासी श्लोकों के माध्यम से व्रतों की गणना की गयी है। इनकी संख्या 77 है, अर्थात् मत्स्य के 17 व्रतों का (मुख्य में 10 + षष्ठी के 7) यहाँ अभाव है। स्पष्ट है कि आज उपलब्ध मत्स्य और पद्म पुराण के सृष्टिखण्ड वाले भाग का आरम्भिक कोई तीसरा स्रोत रहा होगा।

4. कई शताब्दियों बाद लक्ष्मीधर द्वारा संकलित **कृत्यकल्पतरु** (सन् 1100-1130) के व्रतखण्ड में तथा हेमाद्रि के **व्रतकल्प** (सन् 1260-1270) में व्रतों की जो तालिका दी है, वहाँ मत्स्य और पद्म के अधिकतर व्रतों का समावेश है।

5. काणे ने लगभग एक हजार व्रतों की जो सन्दर्भ सहित सूची दी है, उसमें इन सबका (क्वचित अपवाद छोड़कर) समावेश है।

6. **मत्स्य पुराण** के मुख्य व्रत कुल तीस हैं, उनमें एक है 'षष्ठीव्रत'। इसके अन्तर्गत 64 व्रतों को संक्षेप में गिनाया गया है। मुख्य व्रतों में 9 सूर्य के, 4 विष्णु और शिव के, 3 गौरी एवं दुर्गा के, 2 कामदेव तथा 1 क्रमशः लक्ष्मी, वाणी (सरस्वती), ग्रह, चन्द्र, शुक्र, मंगल तथा अगस्ति से सम्बन्धित हैं। रोचक बात यह है कि इनमें गणपति, कार्तिकेय, सप्तमातृका आदि गुप्त या गुप्तोत्तर कालीन प्रमुख देवताओं से सम्बद्ध कोई व्रत नहीं है।

7. महीनों का विचार करें तो चैत्र, वैशाख, श्रावण, आश्विन, मार्गशीर्ष, पौष व माघ तथा तिथियों की दृष्टि से द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, सप्तमी, अष्टमी, द्वादशी एवं चतुर्दशी को महत्त्व मिला है। सर्वाधिक बात सप्तमी एवं द्वादशी की है। संक्रान्तियों में 'विषुव' अर्थात् मेष और तुला संक्रान्ति तथा 'अयन' (दक्षिणायन का आरम्भ कर्क और उत्तरायण का आरम्भ मकर संक्रान्ति) को गिनाया गया है।

8. व्रतों के उद्यापन के समय दान रूप में देय सोने की बनी प्रतिमाओं या प्रतीकों पर दृष्टिपात करें तो महत्त्व की यह बात उभर कर आती है कि उस काल में देश की समृद्धि चरम सीमा पर रही होगी। इन सबके लिए सुवर्ण का केवल उपयोग ही नहीं गिनाया गया है, अपितु 'पल' (= सवातीन या चार तोला)[6] के परिमाण में वस्तु का अपेक्षित भार भी बतलाया गया है। यह साधारणतया 1 पल से 1000 पलों की सीमा तक है। माना जा सकता है कि जब विधान किया गया है तो निश्चित रूप से उसका व्यवहार भी होता होगा।

अब 'मुख्य व्रतों' की ओर चलें। 'षष्ठी व्रतों' की विशेषताओं की चर्चा हम यथा स्थान करेंगे। चर्चा का आरम्भ 'शिव व्रतों' से करें।

मुख्य व्रत : शिव व्रत

1. **आर्द्रानन्दकरी तृतीया**–(क्रमाङ्क 4, आरम्भ– ब्रह्म (?), मृग, हस्त या मूल नक्षत्र के साथ पड़ने वाली आषाढ़ शुक्ल तृतीया)। आराध्य प्रतिमा- आसनस्थ शिव पार्वती; उद्यापन में सोने की उमा-महेश्वर प्रतिमा का दान। उमा-महेश्वर मूर्ति का लक्षण इसी पुराण में अन्यत्र[7] वर्णित है। तदनुसार यह उमामहेश्वर की आलिंगन प्रतिमा होनी चाहिये।

2. **आदित्यशयन व्रत**–(क्रमाङ्क 6, आरम्भ- रविवार के साथ सप्तमी तथा हस्त नक्षत्र या संक्रान्ति का दिन)। शिवलिंग या उमामहेश्वर मूर्ति का सूर्य रूप में पूजन, क्योंकि सूर्य और शिव में कोई भेद नहीं है। हस्त नक्षत्र से आरम्भ कर सूर्य नामों से सूर्य की अंगपूजा का विधान है। उद्यापन में सोने के आठ अंगुल के अष्टदल कमल का दान बतलाया गया है। स्पष्ट है कि पूर्ण विकसित कमल को सूर्य का प्रतीक माना गया है। विशेष महत्त्व की बात है कि यहाँ सूर्य और शिव की एकरूपता स्वीकार की गयी है, जो **स्कन्दपुराण** तथा **कूर्मपुराण**[9] में भी वर्णित है। **स्कन्द पुराण** का रेवाखण्ड वाला उल्लेख तो रोगों से छुटकारा पाने के लिए सूर्य की शिवरूप में बनी मूर्ति का दान देने की बात कहता है। इस प्रकार का अंकन हमें प्रतिमा जगत् से भी ज्ञात है। एक उदाहरण तो हिंगलाजगढ़ (मध्य प्रदेश) से मिला है, दूसरा लौस एंजिलस् संग्रहालय में है, जहाँ कमल पर पद्मासन में बैठे चतुर्भुज आदित्य शंकर के ऊपरी हाथों में त्रिशूल व सर्प तथा साधारण हाथों में कमल[10] है। दक्षिण के चोल कलाकार तो एक पग और आगे बढ़ गये। उन्होंने दारासुरम् - तंजावर के ऐरावतेश्वर मंदिर में (सन् 1150) एक त्रिमुख-अष्टभुज मूर्ति में[11] सूर्य के साथ अर्धनारी शिव को बना दिया।

3. कृष्णाष्टमी व्रत–(क्रमाङ्क 8, आरम्भ- मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी से)। यहाँ प्रतिमास विशेष नाम से शिवपूजन का विधान है। समाप्ति पर किसी प्रतिमा या प्रतीक दान की बात नहीं है, पर पवित्र वृक्षों के रूप में पीपल (अश्वत्थ), बरगद (वट), गूलर (औदुंबर), पाकर (प्लक्ष), ढाक (पलाश) तथा जामुन (जम्बु) का उल्लेख है।

4. शिव चतुर्दशी या माहेश्वर व्रत–(क्रमाङ्क 24, आरम्भ- मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्दशी)। हर महीने की शुक्ल एवं कृष्ण चतुर्दशी को शिव पूजन करके सोने के उमामहेश्वर का तथा सुवर्ण वृषभ का समाप्ति पर दान देना है। उमामहेश्वर के प्रतिमा लक्षण की चर्चा हम ऊपर कर आये हैं।

सूर्यव्रत

इनकी संख्या सबसे अधिक अर्थात् नौ है। इनमें से सात तो सप्तमियों के व्रत हैं, जिन्हें 'सौरधर्म' के अन्तर्गत गिनाया गया है।[12] तथा एक रविवार से तथा अन्य संक्रान्ति से सम्बद्ध है।

5. कमलसप्तमी–(क्रमाङ्क 7, आरम्भ- वसंत अर्थात् चैत्र शुक्ल सप्तमी)। यहाँ सूर्यपूजा के लिए मुख्य प्रतीक सोने का कमल बतलाया गया है। व्रत की समाप्ति पर दान में सोने के कमल, शय्या, गाय आदि देने की बात कही गयी है।

6. कल्याणसप्तमी–(क्रमाङ्क 9, आरम्भ- रविवार शुक्ल सप्तमी)। कर्णिका युक्त अष्टदल कमल के माध्यम से सूर्य पूजा का विधान है।

7. फलसप्तमी–(क्रमाङ्क 14, आरम्भ- मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी)। इस व्रत में सोने के कमल के साथ ही सोने का सूर्य भी बनता है, जिसका भार 1 पल (चार तोला) होगा। सूर्यमूर्ति का **मत्स्य पुराण**[13] में कम से कम दो स्थलों पर वर्णन मिलता है। दोनों स्थानों के सूर्य रथस्थ हैं, प्रथम वर्णन संक्षिप्त है, दूसरा सभी परिकर देवताओं के साथ है।

8. मन्दार सप्तमी–(क्रमाङ्क 17, आरम्भ- माघ शुक्ल सप्तमी)। इसका दूसरा नाम अचला सप्तमी या रथ सप्तमी है। यहाँ सूर्य को मन्दारनाथ व मन्दारभवन कहा गया है। पूजा के लिये सुवर्ण का 'सुशोभन पद्महस्त पुरुष' बनाने षा विधान है, जो स्पष्ट ही पद्मकर सूर्य की मूर्ति है।

9. विशोक सप्तमी–(क्रमाङ्क 22, आरम्भ- माघ शुक्ल सप्तमी)। पूजनीय प्रतीक सोने का कमल है।

10. शुभ सप्तमी–(क्रमाङ्क 26, आरम्भ- आश्विन सप्तमी)। प्रतीक रूप में सोने के बैल का उल्लेख है।

11. शर्करा सप्तमी–(क्रमाङ्क 23, आरम्भ- माधव (वैशाख शुक्ल) सप्तमी)। यहाँ प्रतीक रूप में सोने के घोड़े का (सुवर्णाश्व का) दान देना है। एक रोचक उल्लेख इस प्रसंग में यह भी मिलता है कि अमृत प्राशन करते समय सूर्य के मुँह से उसके कुछ बिन्दु गिर पड़े, जिनसे ईख, चावल और मूंग की उत्पत्ति हुई। 'ईक्षुसार' होने के कारण शर्करा या चीनी को भी 'अमृतात्मवान्' कहा गया[14]। ये सारी वस्तुएँ सूर्य को प्रिय हैं।

संक्षेप में सूर्य के सप्तमी व्रतों में सूर्य की पद्महस्त प्रतिमा तथा प्रतीक रूप में सोने के कमल, घोड़े और बैल का उल्लेख है।

12. **आदित्यवार व्रत**–(क्रमाङ्क 5, हस्त नक्षत्र से युक्त रविवार)। यहाँ पूजन के लिए लाल चन्दन से लिखा बारह पँखुड़ियों वाला कमल तथा समाप्ति पर दान के लिये सुवर्ण पद्म तथा द्विभुज पुरुष मूर्ति का वर्णन है। स्पष्ट है कि यह पुरुष दो हाथों वाला सूर्य है।

13. **संक्रान्ति व्रत**–(क्रमाङ्क 28) अयन और विषुव अवसरों की संक्रान्ति अर्थात् मकर और कर्क तथा मेष और तुला संक्रान्तियों पर यह व्रत करना है। यहाँ भी अष्टदल कमल पर सूर्य का आवाहन, पूजन तथा समाप्ति पर सोने के कमल के दान की बात कही गयी है।

विष्णुव्रत

14. **अशून्यशयन व्रत**–(क्रमाङ्क 3, आरम्भ- श्रावण शु. 2)। पुरुष और स्त्री को परस्वर विरह से बचाने वाले इस व्रत के उपास्य हैं लक्ष्मी और गोविन्द। समाप्ति पर शय्यादि के साथ सुवर्ण की 'देवदेव' अर्थात् विष्णु-लक्ष्मी की मूर्ति का दान देना है।

15. **नक्षत्रपुरुष व्रत**–(क्रमाङ्क 12, आरम्भ- चैत्र मास में मूल नक्षत्र से)। इसमें वासुदेव की मूर्ति बनाकर प्रत्येक नक्षत्र के अनुसार विष्णु के अलग-अलग नाम से उनका अंगपूजन करना है। उदाहरणार्थ मूल नक्षत्र पर विश्वधर नाम से चरणों का पूजन, रोहिणी पर अनन्त नाम से गुल्फ की पूजा, अश्विनी पर वरद नाम से जंघा और जानु का पूजन आदि। इस प्रकार नक्षत्र-पुरुष की विधिवत् उपासना की समाप्ति पर सोने की शय्या के साथ लक्ष्मी तथा विष्णु की अर्चा या मूर्ति का दान देना है।

16. **भीम/कल्याणिनी द्वादशी व्रत**–(क्रमाङ्क 15, आरम्भ माघ शुक्ल 12)। अन्य व्रतों में क्षुधा के कारण निराहार रहने में असमर्थ मध्यम पाण्डव भीमसेन को समग्र व्रतों का एक साथ फल देने वाले इस कल्याणिनी द्वादशी व्रत को भीमसेन का ही नाम दिया गया है। यहाँ विष्णु पूजा की तो विस्तृत चर्चा है, पर किसी मूर्ति या प्रतीक का स्पष्ट उल्लेख नहीं है।

17. **विभूति द्वादशी व्रत**–(क्रमाङ्क 20, आरम्भ- चैत्र, वैशाख, आषाढ़, कार्तिक, मार्गशीर्ष, फाल्गुन की शुक्ल द्वादशी)। सोने की 'उत्पल संयुक्त मत्स्य' अर्थात् कमल पर स्थित मछली की मूर्ति की स्थापना तथा उसी के दान का यहाँ विधान है। साथ ही बारह महीनों में विष्णु के दस अवतार तथा दत्तात्रेय और व्यास के रूपों अर्थात् प्रतिमाओं के दान की भी बात कही गयी है।

मछली के रूप में मत्स्यावतार के अंकन का उल्लेख **मत्स्यपुराण** में अन्यत्र भी है। विष्णु के दस अवतारों का सामूहिक अंकन लगभग छठीं शताब्दी तक नहीं मिलता। अब तक की ज्ञात पाषाण कलाकृतियों में इस प्रकार के सबसे प्रथम दर्शन पठारी (मध्य प्रदेश) में प्राप्त ढलते गुप्त काल के एक शिलापट्ट पर होते हैं, किन्तु यहाँ मत्स्य अनुपस्थित है[16]। मध्यकालीन कला में दशावतार समूह में मत्स्य के दर्शन होते हैं। इस काल के एकाकी मत्स्य भी विद्यमान हैं। कहीं वह पद्मलता के बीच में[17], और कहीं कमल पर ही सिथत[18] दिखलाये गये हैं।

रही अवतारों में दत्तात्रेय और व्यास के समावेश की बात। इस विषय में ज्ञातव्य है कि **विष्णुधर्मोत्तर पुराण**[19] के चौबीस, **स्कंदपुराण**[20] के चौदह तथा **भागवत पुराण**[21] के बाईस अवतारों में दोनों समाविष्ट हैं। इनके स्वतन्त्र रूपों की प्राप्ति लगभग दसवीं शती के पूर्व नहीं होती।

18. **गौरी तृतीया/अनन्त तृतीया व्रत**–(क्रमाङ्क 10, आरम्भ- वैशाख, नभ (श्रावण), मार्गशीर्ष शुक्ल 3)। द्वादशदल कमल तथा देवी प्रतिमा के पूजन की यहाँ चर्चा है, पर प्रतिमा लक्षणों का अभाव है। दान में देवी के नाम से सुवर्ण कमल देने की बात कही गयी है। इस सन्दर्भ में ज्ञातव्य है कि **ब्रह्म वैवर्त पुराण**[22] मार्गशीर्ष मास को संक्रान्ति को मनाये जाने वाले गौरी व्रत की बात करते हुए बालुकामयी दशभुजा दुर्गा के पूजन का महत्त्व बतलाता है।

19. **रस कल्याणिनी तृतीया**–(क्रमाङ्क 18, आरम्भ- माघ शुक्ल तृतीया)। वर्ष भर व्रताचरण के बाद अंगुष्ठ मात्र (बहुधा पूजक के अंगूठे के ऊँचाई की) पंचरत्न समन्वित सोने की गौरी प्रतिमा के दान की बात कही गयी है। यह मूर्ति अक्षसूत्र अर्थात् माला और कमण्डलु को धारण करने वाली चार हाथों की होगी। वह चन्द्रमा से युक्त (इन्दुयुता) एवं श्वेतवस्त्र (सितनेत्र पट) परिधान किये रहेगी। गौरी का अभिप्राय स्पष्ट ही तपस्विनी पार्वती से है, जो सामान्यत: चतुर्भुज होती है तथा निचले हाथों में माला कमण्डलु और ऊपरी हाथों में शिवलिंग और गणेश अथवा अन्य आयुध रहते है। कला के क्षेत्र से तपस्विनी गौरी की प्रतिमाएँ प्रचुर मात्रा में प्राप्त हैं।

20. **सौभाग्य शयन व्रत**–(क्रमाङ्क 30, आरम्भ वसन्त चैत्र शुक्ल तृतीया)। यहाँ 'इन्दुशेखर संयुता गौरी' की अर्चा का आराधन बताया गया है। समाप्ति पर सोने के उमामहेश्वर, गाय और बैल की स्थापना एवं दान का विधान है।

21. **विशोक द्वादशी व्रत**–(क्रमाङ्क 21, आरम्भ- आश्विन 12)। इस व्रत में नदी की बालू से (नदी बालुकया) एक सूप में लक्ष्मी की प्रतिकृति बनाकर पूजन की बात कही गयी है। यहाँ सम्बन्धित श्लोकों से एक अन्य रोचक बात भी सामने आती है। वर्णन है[23] कि प्रथम तो एक अरत्नि (एक हाथ) लंबा चौड़ा वर्गाकार मिट्टी का 'स्थण्डिल' (छोटा चबूतरा) बनेगा, जिसके चारों ओर आठ अंगुल ऊँची दीवार (भित्ति) बनेगी। स्पष्टत: यह एक प्रकार की मिट्टी का चौकोर पात्र बना। उसमें उत्तर की ओर (उदक्) तीन ओर एक अंगुल ऊँची और दो अंगुल चौड़ी मेड़ से घिरा (वप्रत्रय समावृतं) 'प्लव' बनेगा। यह प्लव शब्द समस्या मूलक है। 'प्लव' के कोष में कई अर्थ हैं–तैरना, उतरना, बन्दर, मेढक और ढाल। इन अर्थों से तो यह स्पष्ट नहीं होता कि दीवालदार चबूतरे में उत्तर की ओर बनने वाला प्लव किस आकार का होगा और न यही स्पष्ट है कि इस 'प्लव' का लक्ष्मी की बालुकामय मूर्ति का क्या सम्बन्ध है। इस सारे विवरण को पढ़ने के बाद हमारा ध्यान पुरातात्विक उत्खननों में कई स्थानों से मिले 'पूजासरोवरों' की ओर जाता है। ये कम से कम मथुरा के परिसर में मौर्यकाल के कुछ पहले से मध्यकाल (ई.पू. तीसरी शती - 12वीं शती) तक पूजा के लिये काम में लाये जाते थे। इनमें से कुछ में एक ओर दीवाल से सटे चौकोर आले तथा मिट्टी की स्त्री मूर्तियाँ भी रखी हुई मिली हैं। एक सरोवर में तो बड़ा सा मिट्टी का कमल भी बना है। डा. हर्टल के मतानुसार इन सरावेरों का सबसे अधिक प्रचलन मित्र शासकों के काल (ई.पू. प्रथम शती) में रहा। किन्तु इस दृश्यमान कड़ी के आधार पर निस्संदेह रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि **मत्स्यपुराण** का ऊपर वाला वर्णन लक्ष्मी से सम्बन्धित किसी पूजा सरोवर की ओर संकेत करता है, हाँ सम्भावना अवश्य बनती है। पूजा सरोवर का कोई साहित्यिक उल्लेख कदाचित् अभी हमें नहीं मिला है।

22. अक्षय तृतीया व्रत–(क्रमाङ्क 2, आरम्भ- वैशाख शुक्ल 3)। इसे सारस्वत व्रत भी कहा गया है। उपास्य देवी के ध्यान में उसे पुस्तक और कमण्डलु धारण करने वाली कहा गया है। समाप्ति पर दान रूप में गाय, वस्त्र आदि के साथ घण्टा देने का भी विधान है। घण्टा सोये हुए को, असावधान को जगाने का काम करता है, अतएव इसे सरस्वती का प्रतीक कहना युक्ति संगत है। आज की मान्य परम्परा में अक्षय तृतीया नाम से पहिचाने जाने वाली यह तिथि गौरी और परशुराम से सम्बद्ध है।

कामदेव के व्रत

23. पण्यस्त्री सदाचार व्रत–(क्रमाङ्क 13, आरम्भ- हस्त, पुष्य या पुनर्वसु नक्षत्र के साथ रविवार)। यह व्रत मुख्यतः वेश्याओं के लिये है, जिसे महर्षि दाल्भ्य द्वारा आभीरों द्वारा हरण की गयी श्रीकृष्ण की पत्नियों को सदाचार के रूप में पुनः नारायण को पति रूप में प्राप्त करने के लिये बतलाया गया है। इस व्रत के आराध्य तो कामदेव हैं, पर कामदेव और केशव को एक मानते हुए पूजा हरि या विष्णु की कही गयी है। समाप्ति पर भरे-पूरे बिछौने के साथ गुड़ के कुंभ पर सोने के सपत्नीक कामदेव को गन्ने (इक्षुदण्ड) के सहित पधराकर दान में देना है। यहाँ काम की प्रतिमा का लक्षण तो नहीं गिनाया गया है, पर उसे विष्णु रूप मानते हुए पाश, अंकुश, शंख और चक्रधर कहा गया है। स्मरणीय है कि कृष्णपुत्र प्रद्युम्न को काम का अवतार माना गया है और स्वयं विष्णु का भी एक नाम प्रद्युम्न है।

24. मदन द्वादशी व्रत–(क्रमाङ्क 16, आरम्भ- चैत्र शु. 12)। यहाँ गुड़ से भरे ताम्रपत्र पर केले के पत्ते पर स्थित (कदलीदल संस्थित) कामदेव को स्थापित करना है। बाँयी ओर रति तथा दाँयी ओर दूसरी पत्नी होगी। इस 'कांचन कामदेव' को वर्ष भर बाद व्रत समाप्ति पर गन्ने के साथ दान में देने का विधान है। दूसरा पर्याय काम रूप में 'हरि' की अर्चा का पूजन है। कामदेव की प्रतिमा के लक्षण **मत्स्यपुराण**[24] में अन्यत्र भी वर्णित है। वहाँ भी उनकी दो स्त्रियाँ हैं, बाँयी ओर रति तथा दाहिनी ओर प्रीति। इस प्रकार की प्रत्यक्ष प्रतिमाएँ भी हमें ज्ञात हैं।[25]

ग्रहों के व्रत

25. नव ग्रहपूजन–(क्रमाङ्क 11)। व्रतों के प्रसंग में ही ग्रह पूजन के लिये सभी ग्रहों की मुकुट पहने हुई एक अंगुल ऊँची प्रतिमाएँ निम्न रूप से वर्णित है–

रवि– कमल गर्भ के समान वर्ण, पद्मासन में स्थित, पद्मकर, सप्ताश्व, सप्तरज्जु, द्विभुज।

चन्द्र– द्विभुज, गदा एवं वर, श्वेताम्बर, श्वेताश्व।

धरासुत (मंगल– चतुर्भुज– शक्ति, शूल, गदा, वर, श्वेतरोमा, रक्तमाल्यांबर।

बुध– चतुर्भुज- खड्ग, चर्म, गदा, वर, सिंह पर आरूढ़, श्वेताम्बर, कर्णिकार (कन्हेर?) वर्ण।

गुरु– चतुर्भुज– दण्ड, वर, अक्षसूत्र, कमण्डलु, पीत वर्ण।

शुक्र– चतुर्भुज– दण्ड, वर, अक्षसूत्र, कमण्डलु, श्वेतवर्ण।

शनि– चतुर्भुज- शूल, धनु, बाण, वर, वाहन, गृध्र।

राहु– द्विबाहु- गदा, × , धूम्र, सिंहासनस्थ।

केतु– द्विबाहु- गदा, × , केतु, गृध्रासनस्थ।

26. रोहिणी चन्द्र व्रत–(क्रमाङ्क 19, आरम्भ- पूर्णिमा के साथ सोमवार)। इसमें चन्द्र के नामों के साथ नारायण प्रतिमा का पूजन करना है, तथा वर्ष भर के बाद उद्यापन में सोने के चन्द्र-रोहिणी बनाते हैं। चन्द्र छः अंगुल के और रोहिणी चार अंगुल की होगी। इन्हें आठ मोती, श्वेत वस्त्र तथा शय्यादि के साथ दान में देना है। चन्द्र की रोहिणी के साथ बनी प्रतिमाएँ अधिक मात्रा में ज्ञात नहीं है, पर उनका आरम्भ गुप्तकाल में हो चुका था। लखनऊ के संग्रहालय में गढवा (इलाहाबाद) से प्राप्त एक धन्नी पर विश्वरूप विष्णु के पूजन का दृश्य अंकित है[26]। इसमें दाँये छोर पर मण्डल में रथस्थ सूर्य तथा बाँये छोर पर कोर में रोहिणी और चन्द्र बैठे हुए दिखलाये गये हैं।

27. अंगारक व्रत–(क्रमाङ्क 1, आरम्भ- चतुर्थी के साथ मंगलवार)। इस व्रत के माध्यम से भूमिपुत्र मंगल की आराधना होती है। समाप्ति पर चार अंगुल ऊँची सोने की चतुर्भुज मंगल की प्रतिमा के दान की बात है। यहाँ आयुधों का उल्लेख नहीं है, पर ग्रह पूजन व्रत में शक्ति, शूल, गदा और वर के रूप में इन्हें गिनाया गया है।

28. गुरु-शुक्र शांति व्रत–(क्रमाङ्क 25, दोनों ग्रहों के क्रमशः उदित रहने पर)। देवगुरु बृहस्पति तथा दैत्यगुरु कवि या शुक्र दोनों ब्राह्मण हैं। एक का वर्ण पीला और दूसरे का वर्ण श्वेत है। अतएव गुरु की मूर्ति सोने की तथा शुक्र की चाँदी की बनाने की बात है। ग्रह पूजन व्रत में दोनों के हाथों में माला और कमण्डलु होने की बात कही गयी है।

अन्य व्रत

29. सप्तलोकाधिपत्य प्राप्ति व्रत–(क्रमाङ्क 29, आरम्भ- अगस्ति नामक तारे के उदित रहने पर)। भूर्भुवादि सात लोगों की प्राप्ति के लिये किये जाने वाले इस व्रत में महर्षि अगस्ति की प्रतिमा के पूजन का विधान है। अंगुष्ठ मात्र ऊँची सोने की यह प्रतिमा चार मुखों वाली होगी, किन्तु यहाँ हाथों की संख्या का उल्लेख नहीं है। इसी अध्याय में पहले अगस्ति के रूप का उल्लेख हो चुका है[27]। तदनुसार अगस्ति के चार मुख तो नहीं, चार हाथ अवश्य कहे गये हैं, पर उल्लेख केवल माला और कमण्डलु का ही है। बचे दो में वर तथा अभय की कल्पना की जा सकती है।

ऋषियों में नारद, व्यास, तुंबरु तथा अगस्ति के महत्त्वपूर्ण स्थान हैं और उनकी मूर्तियों के विधान भी हैं। कलाकृतियों में हम इन्हें देख सकते हैं।[28] अगस्ति अपने समय के महान् वैज्ञानिक थे।[29] विंध्याचल को झुकाकर तथा समुद्र को पीकर अर्थात् सुखाकर देश के दक्षिणी भाग को निवास योग्य बनाने का श्रेय अगस्ति को है। बाली द्वीप में अगस्ति को 'शिवगुरु' के नाम से पूजा जाता है और ऋषि रूप में वहाँ उनकी प्रतिमाएँ भी हैं।

30. षष्ठीव्रत–(क्रमाङ्क 27)– यह 60, वस्तुतः 64 व्रतों का एक स्वतन्त्र समूह है, जिन्हें दोनों पुराणों में संक्षिप्त रूप से गिनाया गया है। यहाँ शिव के 14, विष्णु के 8, गौरी के 5, शिव-केशव के सम्मिलित 3, ब्रह्मा, इन्द्र तथा वरुण में प्रत्येक के 3, चन्द्र, लक्ष्मी व कुबेर में प्रत्येक के 2, तथा विनायक, वैश्वानर, सरस्वती, प्रद्युम्न, पितृ और विश्वात्मा के प्रत्येक के 1 व्रत की गणना है। कुछ व्रतों में देवताओं का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। कई में आरम्भ तिथि, वार, मास या नक्षत्र का उल्लेख नहीं है।

उपास्य देवताओं की प्रतिमा विषयक चर्चा भी कम है, किन्तु अनेक देवताओं के लिये स्वीकृत प्रतीकों की चर्चा अवश्य ही रोचक है। यहाँ विद्यमान देवता और उनके प्रतीक निम्नांकित हैं–

शिव/रुद्र	–	शूल, मही, धेनु, सिंह, शंख, दीपिका, वार्ताकु (बैंगन)			
विष्णु	–	नीलोत्पल			
शिव-विष्णु	–	चक्र-शूल, पंकज-शूल, पुष्पत्रय			
लक्ष्मी	–	कमल	सरस्वती	–	घण्टा
सूर्य	–	कमल	चन्द्र	–	लवणभाजन
विनायक	–	हाथी	वरुण	–	हाथी का रथ
विश्वात्मा	–	ब्रह्माण्ड	काम	–	अशोकवृक्ष
कल्पवृक्ष	–	कल्पवृक्ष			

इनके अतिरिक्त मृग, वृक्ष, कुंभ आदि का भी प्रतीकों के रूप में समावेश किया गया है। इनमें से कुछ की अधिक विस्तार से चर्चा इसी पुराण के दानाध्यायों में मिलती है, इससे इनके रूपांकनों को समझने में सहायता मिलती है।

षष्ठीव्रत में प्रतीक

चक्र-शूल/त्रिशूल– विष्णु एवं शिव के ये आयुध-प्रतीक सर्वज्ञात हैं। सोने के बने चक्र, शूल और त्रिशूल को व्रत-समाप्ति के अवसर पर दान में देने का विधान कृष्ण व्रत (9) व महापातक नाशन व्रत (36) में किया गया है।

शंख– धृतिव्रत (21) में शंख विष्णु और शिव दोनों का प्रातिनिध्य करता है। भारतीय संस्कृति में शंख का अपना महत्व है। देवपूजन के आरम्भ में उसका पूजन अनिवार्य है; उसमें चन्द्र, वरुण, प्रजापति, गंगा, सरस्वती आदि का निवास माना गया है, इसीलिये उसमें रखा गया जल भी पवित्र है। नवनिधियों में शंख की गणना है। धनदाता के रूप में 'शंख से मुद्राओं की बरसात' मथुरा के कुषाण कालीन कलाकारों का प्रिय अभिप्राय रहा। युद्ध का आरम्भ, समाप्ति या विजय की सूचना देने वाला यह रणवाद्य भी है। साधारण शंखों की तुलना में 'दक्षिणावर्त' शंख का अपना महत्व परिकल्पित है। विष्णु के अतिरिक्त कई देवताओं के हाथ में शंख रहता है। धृतिव्रत में इसका दान कहा गया है।

घण्टा– सारस्वत व्रत (57) की समाप्ति पर घण्टा के दान की बात कही गयी है। मुख्य व्रतों में अक्षय तृतीया व्रत (क्रमांक 2) में भी घण्टा के दान का उल्लेख है। नित्य पूजन में देवताओं के आगमन और राक्षसों के बहिर्गमन के लिये घण्टानाद किया जाता है। देवता ज्ञान एवं प्रकाश के, तथा राक्षस अज्ञान एवं अन्धकार के प्रतीक हैं। तिब्बत की बौद्ध परम्परा में घण्टा और वज्र का संयुक्त रूप में दर्शन होता है। वज्र का कार्य अज्ञान का नाश करना तथा घण्टा का उद्देश्य ज्ञान को जगाना है। एतावता सरस्वती के प्रतीक रूप में घण्टा की योजना युक्तिसंगत है।

कमल/पद्म/पंकज– सौरव्रत (63) और संपद्व्रत (55) में सोने का कमल देना है। भारतीय संस्कृति में कमल का स्थान बहुत ऊँचा है। पृथ्वी को भी कमल के आकार का माना गया है[30]। प्रतीक रूप में कमल का सम्बन्ध मुख्यतया सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु तथा लक्ष्मी से है। व्रतों में देवतास्थापन के लिये अष्टदल तथा द्वादशदल चंदनादि से रेखांकित कमल का उल्लेख मिलता है। वहाँ पद्म के प्रत्येक दल पर तथा कर्णिका (मध्यभाग) में

व्रतानुसार देवताओं की आवाहन पूर्वक प्रतिष्ठा की जाती है। सोने का कमल बनाकर उसे उद्यापन में दान देने का विधान कई व्रतों में किया गया है।

नीलोत्पल– लीलाव्रत/नीलव्रत (41) में विष्णु रूप में सोने के नीलोत्पल, अर्थात् नीले रंग के कुमुद-नीलकमल के दान का उल्लेख है। साधारणतया विष्णु का सम्बन्ध सूर्य विकासी कमल से है।

कुम्भ– घृतव्रत (14) में ब्रह्मा के निमित्त कुंभ के दान का विधान है। इसका विस्तार **मत्स्यपुराण** के दानाध्याय[31] में 'महाभूतघटदान' के नाम से मिलता है। तदनुसार कल्पवृक्ष के साथ बनने वाला घट प्रमाण में 1 बित्ते (प्रादेश) से 100 अंगुल तक का होगा; साथ में और भी सोने की मूर्तियाँ होंगी, जैसे–

विष्णु–पद्मासन में, **पृथ्वी-** सपंकजा, वराह के द्वारा उठाये गये रूप में (वराहोद्धृता तद्धार सपंकजा), **वरुण-** सोने के मकर पर, **अग्नि-** मेघगत, **वायु-** कृष्णमृगासन, **विनायक-** मूषिकस्थ, **पंचवेदों** के प्रतीक के रूप में ऋग्वेद (अक्षसूत्रधर), यजुर्वेद (पंकजधर), सामवेद (वीणा-वेणुधर), अथर्ववेद (स्रुक-स्रुवाधर) और पुराण (अक्षसूत्र कमण्डलूधर) तथा कुबेर।

बैल, हाथी, घोड़ा और सिंह– प्राचीन साहित्य में 'महाआजनेयपशु' के नाम से इनका उल्लेख मिलता है। बौद्ध साहित्य में इनके एकत्र अंकन को 'चतुष्पद पंक्ति' कहा गया है। कला में इनका अंकन सरस्वती सभ्यता (सिंधुघाटी की सभ्यता) से लेकर 19वीं शती तक मिलता है[32]। बुद्ध के चरित्र की अलग-अलग घटनाओं से इनका सम्बन्ध है। जैनों के यहाँ ये क्रमशः ऋषभ, अजित, संभव (प्रथम तीन तीर्थंकर) तथा चौबीसवें तीर्थंकर महावीर के 'लांछन' हैं। ब्राह्मण परम्परा में शिव, इन्द्र, सूर्य और दुर्गा से ये वाहन रूप में सम्बद्ध हैं। व्रतों के प्रसंग में सोने का बैल उमामहेश्वर के साथ (रुद्रव्रत (39) एवं सौभाग्यशयनव्रत (30)), सोने का हाथी गणेश के साथ (वैनायक व्रत 59), हाथी का रथ वरुण के साथ (वारुण व्रत (42), सोने का घोड़ा सूर्य के साथ (आदित्यवार व्रत 5)), अश्वयुक्त रथ राजराज (कुबेर) के साथ (अश्वव्रत (2)), एवं सोने का सिंह शिव के साथ (वीरव्रत (48))[33] संबद्ध हैं। घोड़े और हाथी के रथ का विस्तृत विवरण मत्स्यपुराण के दान प्रकरण[34] में है। तदनुसार अश्वरथ में चार या आठ घोड़े, व चार पहिये होंगे तथा सूर्य का प्रतीक 'सिंहध्वज' भी होगा। गजरथ में चार पहिये, चार सोने के हाथी तथा गरुड़ध्वज भी लगा होगा। यह रथ भार में 5 पल (20 तोले) से यथाशक्ति ऊपर होगा। सोने के अश्व का परिमाण 3 पल (12 तोले) से 1000 पल के बीच का होगा[35]।

धेनु/गाय– भारतीय संस्कृति में गाय का बहुत अधिक महत्त्व है। वह सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाली 'कामधेनु', धर्म की माता (धर्म-स्वयं वृषभ रूप में परिकल्पित है), पृथ्वी, लक्ष्मी, आदि विविध रूपों में वर्णित है। 'गौदान' को महादान कहा गया है। **मत्स्यपुराण** में वर्णित लगभग सभी व्रतों की समाप्ति पर गोदान का विधान है। रुद्रव्रत (37) में सोने की गाय देने की बात कही गयी है। प्रत्यक्ष गाय के अतिरिक्त **मत्स्यपुराण** में तथा इतरत्र भी दान के लिये दस प्रकार के पदार्थों को 'धेनु' नाम से गिनाया गया है[36]। यथा गुड़धेनु, घृतधेनु, तिलधेनु, जलधेनु, क्षीरधेनु, मधुधेनु, शर्कराधेनु, दधिधेनु, रसधेनु तथा द्रवधेनु। इसके अतिरिक्त सुवर्णधेनु, नवनीत धेनु तथा रत्नधेनु का भी उल्लेख किया जाता है। यह भी स्मरणीय है कि दान के लिये प्रयुक्त होने वाली गाय 'सवत्स' अर्थात् बछड़े के साथ होनी चाहिये। कला के क्षेत्र में शुचिता एवं समृद्धि की द्योतक सवत्स धेनु का कई प्रकार से दर्शन होता है[37]। प्रतीक रूप में कई घरों में धातुनिर्मित सवत्स गाय का नित्य पूजन होता है।

मृग– सोने के मृग का दान अहिंसाव्रत (1) में उल्लेखित है। मृग एक प्रकार से अहिंसक पशु है। वह दूसरों के द्वारा अधिकतर मारा ही जाता है। ब्राह्मण परम्परा में मृग यज्ञ का रूप है, वह चन्द्र और वायु से सम्बद्ध है, तथा जैनों के यहाँ वह सोलहवें तीर्थंकर शालिनाथ का लांछन है।

ब्रह्माण्ड– ब्रह्मव्रत (31), जिसके उपास्य देवता ब्रह्मा या विश्वात्मा हैं, के प्रसंग में समाप्ति के समय 'ब्रह्माण्ड' के दान की बात कही गयी है, जो 3 पल अर्थात् 12 तोले से ऊपरी भार वाले सोने का होगा। **मत्स्य पुराण** के दानाध्याय[38] में ब्रह्माण्ड के महादान का वर्णन है। वहाँ 20 पल अर्थात् 80 तोले से ऊपरी भारवाले दो कलश बनाने की बात कही गयी है, तथा आठ दिग्गज, आठ लोकपाल, 6 वेद, बीच में ब्रह्मा, ऊपर शिखर रूप में शिव, विष्णु, सूर्य, उमा, लक्ष्मी आदि का उल्लेख है। किन्तु 'ब्रह्माण्ड' के अपेक्षित आकार की बात स्पष्ट नहीं है। शब्द का विचार करें तो स्पष्टत: यह वस्तु अण्डे के आकार की होनी चाहिये। ब्रह्मा को 'हिरण्यगर्भ' कहा गया है, क्योंकि उनका प्राकट्य हरि-हर के संयोग से उत्पन्न सोने के अण्डे से ही माना गया है[39], और यहीं से आगे सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति हुई है।

जम्बुद्वीप– वार्षव्रत (44) में चांदी के बने जंबुद्वीप के दान की बात कही गयी है। सात द्वीपों वाली पृथ्वी का एक द्वीप जम्बुद्वीप है, जो लवण समुद्र से घिरा है। पुराणों में इसका आकार चतुर्दल कमल का बतलाया गया है, जिसकी कर्णिका में मेरु पर्वत है[40]।

मही/पृथ्वी– धराव्रत (20) में इसका उल्लेख है। यह बीस पल (80) तोले से अधिक भार की सोने की होनी चाहिये, पर वहाँ इसका आकार स्पष्ट नहीं है। हेमधराख्य महादान[41] के वर्णनानुसार धरा को जंबुद्वीप के समान ही बनाना है। इसमें मर्यादापर्वत, मेरु, नदी, नद, 8 वसु, 11 रुद्र, 12 आदित्य भी होंगे। यह सागर वेष्टिता होगी। **वायुपुराण**[42] में इसे 'पद्माकारा' कहा गया है। **मत्स्यपुराण**[43] दानाध्याय मे उसे पंकजधारिणी के ठीक उसी रूप में बनाने की बात कहना है, जिस रूप में उसे वराह ने उठाया था। कला में हमें पृथ्वी के तीन रूप मिलते हैं। एक तो नृवराह की केहुनी पर दाँत के पास स्थित नारी रूप, दूसरा 'आदिवराह' की चाँदी के मुद्राओं पर वराह के मुख के पास दिखलायी पड़ने वाला वर्तुलाकार रूप और तीसरा पंचाल के मित्रवंश के शासक अग्निमित्र तथा सूर्यमित्र की कुछ मुद्राओं के पृष्ठ भाग पर आयताकार क्षेत्र में लेटी हुई स्त्री का रूप[44]।

कल्पवृक्ष– कल्पवृक्ष (8) की समाप्ति के अवसर पर एक पल अर्थात् चार तोले से अधिक भार का सोने का कल्पवृक्ष दान में देना है। कल्पवृक्ष या कल्पद्रुम दैवी शक्ति से सम्पन्न वह वृक्ष माना जाता है, जिसका आश्रय लेने पर सारी कामनाएँ तत्काल पूर्ण होती हैं। यहाँ उसके आकार का कोई वर्णन नहीं है, पर उसी पुराण के दान प्रकरण[45] में कल्प पादप के निर्माण का उल्लेख है। तदनुसार तीन पर से एक हजार पल (4,000 तोला) तक भार के इस वृक्ष में अनेक फल, पक्षी, वस्त्र और आभूषण लगे होने चाहिये। **वायु पुराण**[46], उत्तर कुरु वर्ष का वर्णन करते हुए ऐसे वृक्षों का उल्लेख करता है, जिनसे वस्त्र, आभरण, मधु, क्षीर, आदि प्रसूत होते हैं। जैन साहित्य में वस्तुओं के नाम-भेद से दस प्रकार के कल्पद्रुम गिनाये गये हैं; जैसे मण्यंग, मद्यंग, तूर्यंग, इत्यादि[47]। इसी प्रसंग में **मत्स्यपुराण** में प्राप्त होने वाला सोने की दस कल्पलताओं का वर्णन भी कम रोचक नहीं है। ये लताएँ भी अनेक पुष्प, वस्त्र, फल, पक्षी, आदि से युक्त होंगी तथा वहीं लोकपालों का अनुकरण करने वाली देवियाँ भी होंगी। कला के क्षेत्र में कल्पवृक्ष के अंकन का सुन्दर नमूना विदिशा (म.प्र.) से मिला है। यह एक स्तंभशीर्ष है जो इस समय कोलकाता के भारतीय संग्रहालय में सुरक्षित है। कल्पलताओं में लगे आभूषणों का दृश्य भरहुत की शुंगकालीन कला में भी विद्यमान हैं।

अशोक वृक्ष– प्रद्युम्न अर्थात् कामदेव के प्रीत्यर्थ किये जाने वाले काम (10) में सोने के अशोक वृक्ष का दान विहित है। अशोक अर्थात् आनन्द का प्रतीक है। साहित्यिक 'कवि संकेतों' में अशोक वृक्ष किसी कोमलांगी रमणी के पादाघात से खिल उठता है। 'अशोक दोहद' इस नाम से ख्यात इस क्रीड़ा का मथुरा से प्राप्त कुषाण कालीन वेदिका स्तम्भों पर अंकन सर्वश्रुत है[48]।

दिशाएँ– विश्वव्रत (45) में सोने की दिशाओं को दान में देना है। **मत्स्यपुराण** के महाकल्पलता दान[49] के वर्णन में दिशाओं को 'लोकपालों का अनुकरण करने वाली' बताकर निम्न रूप से उनके प्रतिमा लक्षणों की ओर संकेत किया गया है–

पूर्व – (ऐन्द्री)– इभासना, कुलिशायुधा (हाथी पर बैठी, हाथ में वज्र)

आग्नेय – (आग्नेयी)– स्रुवापाणी (हाथ में स्रुवा)

दक्षिण – (याम्या)– महिषारूढ़ा, गदिनी (वाहन भैंसा, हाथ में गदा)

नैर्ऋत्य – नैर्ऋति– सखड्गा (तलवार के साथ)

पश्चिम – वारुणी– झषस्था, नागपाशिनी (मत्स्य = स्पष्टतः मगर, हाथ में नागपाश)

वायव्य – ... – पताकिनी, मृगस्था (हाथ में पताका, वाहन मृग)

उत्तर – सौम्या– शंखिनी (हाथ में शंख)

ईशान्य – माहेश्वरी– वृषारूढ़ा (बैल पर आरूढ़)

ऊर्ध्वः – ब्राह्मी

अधः – अनन्तशक्ति– पद्म–शंख करा (हाथ में पद्म व शंख)

ये सभी मौलि वाली (मौलिनी) तथा बालकों के लिये (बालकान्विता) होंगी। यह 'कल्पलता–वधुओं' या 'दिगङ्गनाओं' की प्रतिमाएँ भार में 5 से 1000 पलों के बीच यथाशक्ति बनेंगी।

दिशाओं के मूर्त स्वरूपों की एक परम्परा जैनों के यहाँ भी प्रचलित रही। जंबुद्वीप प्रज्ञप्ति में तीर्थंकर के जन्म काल में 'दिक्कुमारियों' के द्वारा 'सूतिका कर्म' सम्पन्न करने की बात कही गयी है[50]। कला में इनका अंकन एक 'आयागपट्ट[51]' में मिलता है, जहाँ उन्हें धर्मचक्र की बाहरी गुलाई में माला लेकर नृत्यरत दिखलाया गया है। अवलोकनीय है कि यहाँ जैन परम्परा पुराणों की परम्परा से भिन्न है। ब्राह्मण धर्मीय दिशांकन का कोई उदाहरण हमारी जानकारी में नहीं है।

उपसंहार

मत्स्यपुराण में वर्णित व्रतों के उद्यापन भाग का अध्ययन तथा उसी पुराण के दानाध्यायों से मिलने वाली तद्विषयक सहायता दोनों कुछ देवप्रतिमाओं तथा देवप्रतीकों के विषय में मनोरंजक सामग्री उपस्थापित करते हैं। उपलब्ध कलाकृतियों के साथ उसका तुलनात्मक अध्ययन बड़ा ही रोचक बनता है। यदि हमारा अनुमान सही है तो वालुकामयी लक्ष्मी प्रतिमा के साथ बनने वाले पूजा सरोवरों का उल्लेख, लोकपालानुकारी स्त्रीरूपों में दिशाओं का मूर्तियों की चर्चा, कला में ब्रह्माण्ड, जम्बुद्वीप तथा पृथ्वी के निर्माण विषयक साहित्यिक विधान कदाचित् हमारी आँखों से ओझल हो रहे हैं। इन विधानों की सहायता से प्रत्यक्ष कलाकृतियों में उसकी पहचान होना भी संभव है।

सन्दर्भ :

1. पाण्डुरंग वामन काणे, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, खण्ड 5 भाग 1, पूना 1958 (हिस्ट्री.), पृ. 21
2. काणे, हिस्ट्री., पृ. 255-462
3. मत्स्य., अध्याय 54-57; 60-65; 67-80; 92-94; 96-100
4. काणे, हिस्ट्री., पृ. 40, पाद टिप्पणी 96
5. पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, मोर प्रकाशन, कलकत्ता 1957, अध्याय 20-26; 29, 79, 80
6. 'पल' के परिमाण के लिये देखिये–
   वासुदेव शरण अग्रवाल, पाणिनि कालीन भारत वर्ष, वाराणसी, वि.सं. 2012, पृ. 244, 253। तौल का परिमाण–
   8 चावल = 1 रत्ती/गुंजा (घुंघची)
   80 गुंजा = 1 कर्ष (10 मासा)
   4 कर्ष = 1 पल = 40 मासे ($3^{1}/_{4}$ तोला); कौटिल्य के अनुसार 4 तोला।
7. मत्स्य., 259, 11-20, पृ. 722,
8. स्कन्द., अवंति., 16, 13, पृ. 49; रेवा., 176.15, पृ. 993.
9. कूर्म., पूर्वार्ध., 42, 26-27, पृ. 165.
10. L. Davidson, *Art of Indian Sub continent from Los Angeles Collections,* Los Angeles, 1961, Fig. 48
11. T.Satyamurti, A Rare Sulpture of Siva-Surya : Ardhanari, *Kala*, 4, 1999-2000, pp. 24, Fig. 3.
12. मत्स्य., 73.2-3, पृ. 191
13. मत्स्य., 93.1, पृ. 221; 260.1-8, पृ. 727
14. मत्स्य., 76.13-14, पृ. 195
15. मत्स्य., 259.39, पृ. 724
16. J.N.Banerjea, *Development H.I.*, p. 413.
17. R.C.Agrawal, Some Unpublished Sculptures; *Lalit Kala*, 6, Fig. 12, p-68.
18. माधव मंदिर, नियाली, उड़ीसा
19. विष्णुधर्मोत्तर. III, 85. 42, folio 348.
20. स्कन्द., वैष्णव, वासुदेव., 18.14-45, पृ. 817
21. भागवत, एक. 3.6-25, पृ. 56 (गीताप्रेस, गोरखपुर, पाद टिप्पणी).
22. ब्रह्मवैवर्त., कृष्णजन्म, 27.122-43, पृ. 725।
23. H.Hartel, *Excavations at Sonkh*, Berlin 1993, p. 195.5.6; p 200. 160, 160; p. 197.5;
24. मत्स्य., 260.53-56, पृ. 726.
25. पटना संग्रहालय, आर्च. (Arch),6046 ।
26. लखनऊ संग्रहालय, B.223, b.c., N.P.Joshi, *Catalogue of the Brahmanical Sulptures in the state Museum*, Lucknow, Part. I. 1972, pe. 3. p. 85.
27. मत्स्य., 61, 36, पृ. 165।

28. नी.पु.जोशी, उपदेवता- एक स्वतन्त्र अध्ययन, लखनऊ, 2001, फलक 15.1,2,3 पृ. 44.
29. N.P.Joshi, The sage Agasti, his life and work, *Journal of the U.P. Historical Society*, Ns.V. pp.30-37
30. वायुपुराण, उपोद्घात., 41, 86, पृ 173
31. मत्स्य., अध्याय 288, पृ. 784।
32. वा. श. अग्रवाल, भारतीय कला, वाराणसी 1966, पृ. 135
33. शिव के वाहनरूप में सिंह के लिये - महाभारत, अनुशासन., 17.111 (गीताप्रेस प्रति); लिंगपुराण, 65, 133, पृ. 182 सिंह वाहनः
34. मत्स्य., 280.3-4, पृ. 744; 281. 4-11, पृ. 775.
35. मत्स्य., 279.4-5, पृ. 773
36. मत्स्य., 81.16-29, पृ. 201
37. A.L.Srivastava, Savatsa Go or Savatsa Dhenu : an auspicious symbol in Indian life, *kala*, V, 1998-99, New Delhi, pp. 57-64.
38. मत्स्य., 275.3-9, पृ. 767।
39. वायुपुराण, उपोद्घात., 24-72 से आगे, पृ. 97.
40. मार्कण्डेय पुराण, 55.20, पृ0 214; 40'-मत्स्य0, 283.2-5, पृ0 778
41. वायु., उपोद्घात., 34.44, पृ. 151
42. मत्स्य., 277.5, पृ. 785 : वराहेणोद्धृतां तद्वत् कुर्यात् पृथ्वीं सपंकजाम्।।
43. N.P.Joshi, Some observations on Icongraplic Details of Deitien on Panchal Coins, *Panchal*, II/2, 198, pe. vi, p. 111.
44. मत्स्य., 277.3-4, पृ. 767.
45. वायु., उपोद्घात., 45.11-14, पृ0 183.
46. विस्तार के लिये देखिये- वा.श. अग्रवाल, हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पटना, 1953, पृ. 15; U.P.Shah, Studies in Jaina Art. 1955, p. 75; वा.श. अग्रवाल, भारतीय कला, पृ. 185, 198।
47. राजकीय संग्रहालय, मथुरा संख्या J. 55; V.S.Agrawala, Mathura Museum Catalogue, *Journal of the U.P. Historical Society*, xxiv-xxv, 1951-52, p.23.
48. मत्स्य., 285, -11, पृ. 781; 285.14-15, पृ. 781
49. U.P.Shah, *Studies in Jaina Art*, Banaras, 1955, p.24.
50. लखनऊ संग्रहालय, J. 248.
51. मत्स्य., 80.18-15. पृ. 196- ततस्तु मण्डलं कृत्वा स्थण्डिलं कारयेन्मृदा।।
चतुरस्रं समत्ताच्चारत्निमात्रमुदक्प्लवम् ।।
श्लक्ष्णं हृद्यं च परितो वप्रत्रय समावृतं। अंगुलोच्छ्रिताः वप्राः तद्विस्तारस्तु द्वयंगुलः।
स्थण्डिलस्योपरिष्टाच्च भित्तिरष्टांगुला भवेत्।
नदीवालुकया शूर्पेलक्ष्म्याः प्रतिकृतिं न्यसेत्। स्थण्डिले शूर्पमारोप्य लक्ष्मीमित्यर्चयेत् बुधः।।